

# हे इंसानी नाखून: एक सचित्र यात्रा

By डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा उरतृप्त

SANKALP PRAKASHAN

ISBN: 978-81-23010-01-14

पुस्तक का नाम

*हे इंसानी नाखून*

लेखक

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'



प्रकाशक:

संकल्प प्रकाशन

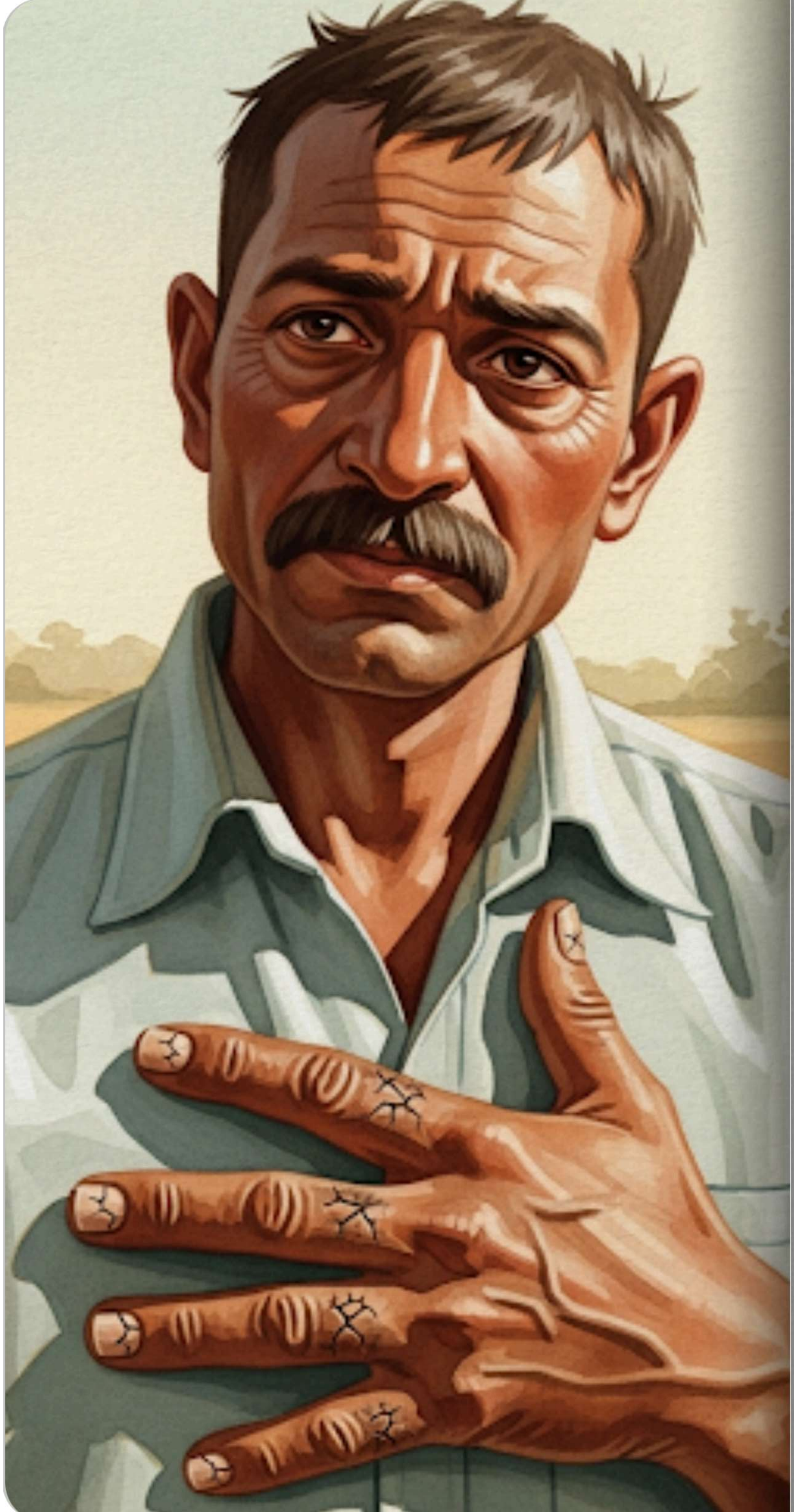
वर्ष 2025

मुद्रक:

साक्षी ऑफसेट, कानपुर

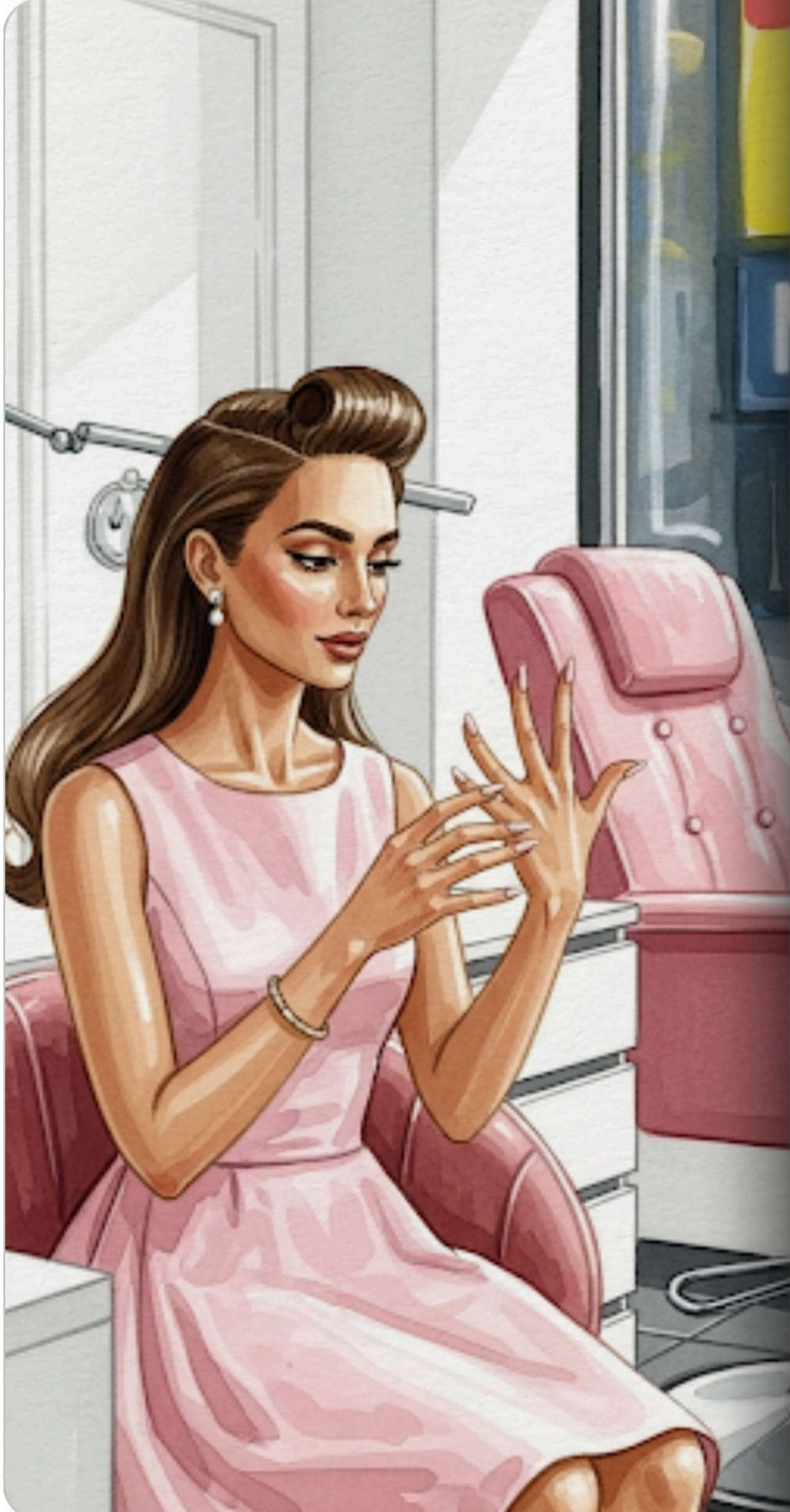
*HEY INSAANI NAKHOON*

By: Dr. Suresh Kumar Mishra 'Uratript' Price: 60/-





हे इंसानी नाखून, तुझको प्रणाम! तू शरीर की सबसे सस्ती चीज़ होकर भी समाज की सबसे महँगी फाइल है—केराटिन की पतली परत, मगर उस पर दर्ज है आदमीयत की खरोंचें, भूख के खड्डे, और आत्मसम्मान के छोटे-छोटे पहाड़।





हम उँगलियों पर तमगे नहीं पहन पाते, तो नाखूनों पर शाना रहते हैं—जैसे खाली जेब वाला tie-पिन लगाकर खुद को उद्योगपति साबित कर दे। शहर के चौराहे पर बिलबोर्ड चमकता है—“Nail Art @ 999”—और उधर गाँव की चौखट पर मजदूर के नाखूनों में मिट्टी अटकी है—पिछली फसल की, पिछले मौसम की, पिछले वादे की।



बताइए, कौन-सा रंग फैशन में है? गरीबी का भूरा, या उम्मीद का हल्का गुलाबी? न्यायालय कहता है, “गारंटी नहीं”, अस्पताल कहता है, “डिपॉजिट पहले”, और सरकार कहती है, “सेल्फी मुस्काइए”—इन तीनों की संयुक्त मोहर की खरोंच हमारे नाखूनों पर रोज़ पड़ती है। साबुन कम है, स्याही ज्यादा—चुनाव की स्याही अंगूठे पर लगती है, मगर असर नाखूनों की जड़ तक उतर जाता है—जहाँ से हथेलियाँ अपनी तकदीर की लकीरों को परखती हैं और आह भरकर

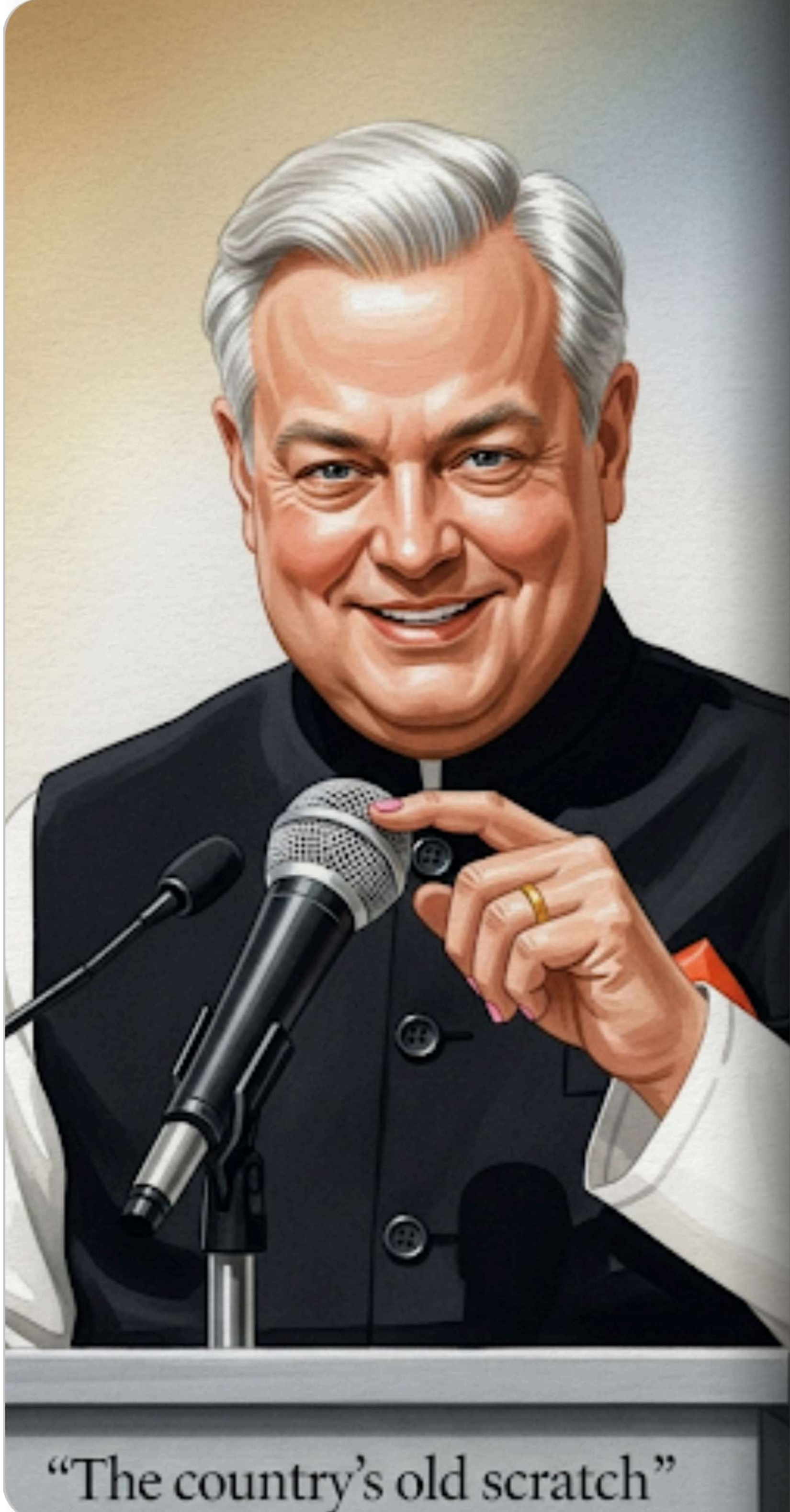



नाखून बढ़ता है ताकि हम उसे काटकर स्वच्छता का नाटक दोहरा सकें; व्यवस्था अपने नाखून बढ़ाती है ताकि वह हमें खरोंचकर याद दिलाती रहे —"साफ-सफाई ऊपर-ऊपर, गंदगी अंदर-अंदर।" बाजार ने उँगलियों का लोकतंत्र बना दिया है—जिसकी जेब लंबी, उसके नाखून लम्बे; जिसकी मज़दूरी छोटी, उसके नाखून टूटे।





पार्लर के शीशे में बैठी एक नवयुवती कहती है, "अल्मंड-शेप कर दीजिए, फ्लोरल रखिए, ग्लॉस फिनिश।" उधर दवा-दुकान के बाहर खड़े दुपहिया वाले की उँगलियों पर तेल और धूल की पपड़ी जमी है, वह हेलमेट की पट्टी बंद करता है और अपनी उँगली का कटा नाखून जेब में डाल लेता है —जैसे सपने का टूटा टुकड़ा लिफाफे में रखते हैं कि किसी दिन जोड़ देंगे।

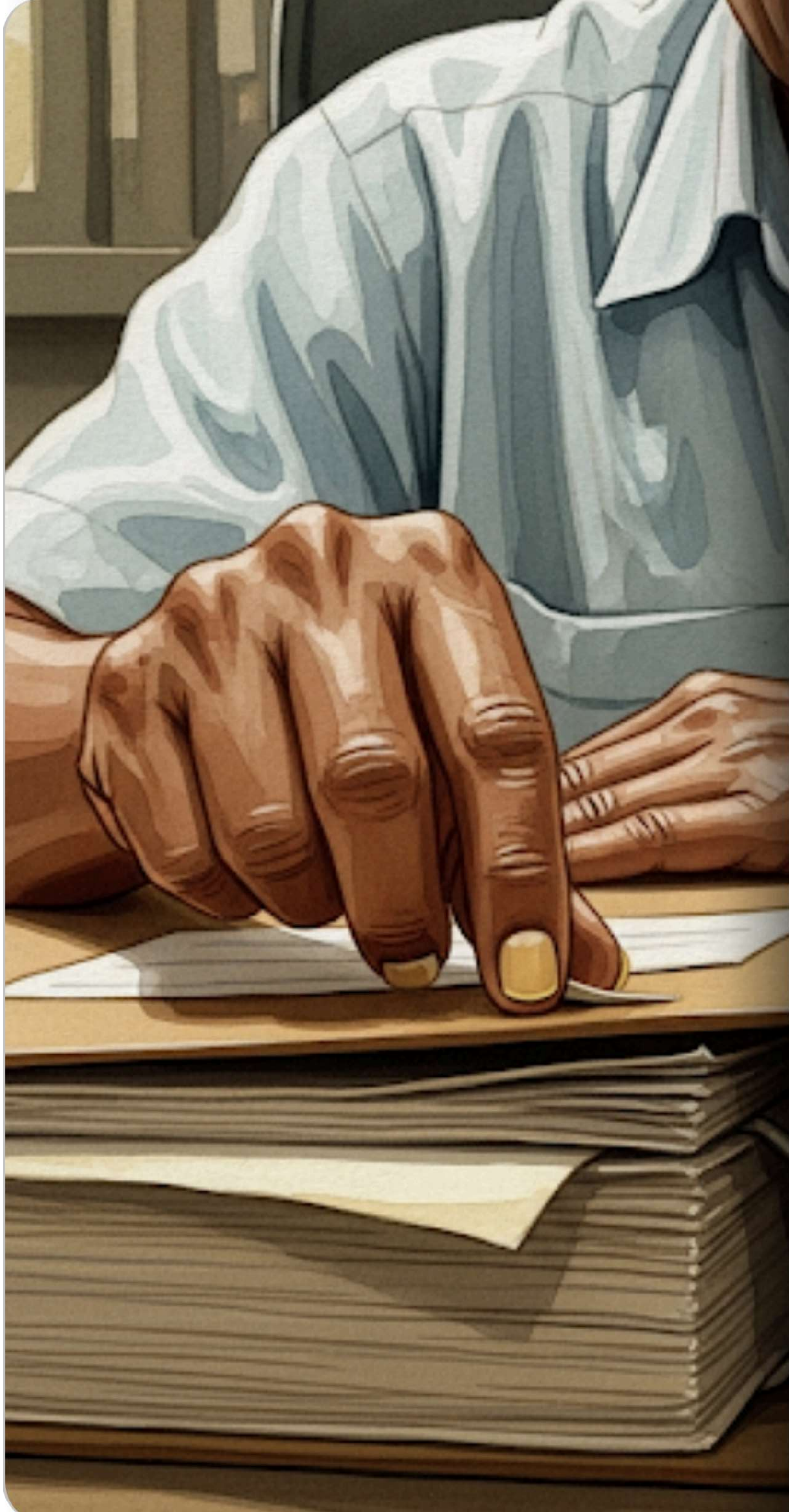





राजनेता मंच पर नाखून से माइक पर हल्की खटखट करते हैं—“टेस्टिंग, टेस्टिंग”—और जनता के कानों में यह खटखट ऐसी लगती है जैसे नोटबंदी की फाइलें, जैसे राहत पैकेज के कागज, जैसे अनुदान के मुहरबंद ख्वाब। प्रेस कॉन्फ्रेंस में उनकी उँगलियाँ इतनी मुलायम कि उन पर देश की कोई पुरानी खरोंच नहीं दिखती; शायद राजनीति का पहला पाठ यही है—नाखून से खून न निकले, बस वोट निकले।



इस बीच टीवी-स्क्रीन पर विज्ञापन मुस्कराता है —“क्यूटिकल ऑयल से उँगलियाँ जवान”—और रसोई में खड़ी स्त्री तवे से रोटियाँ उतारते-उतारते अपना नाखून जला बैठती है; वह हँसकर कहती है—“यह भी उम्र रोकने का तरीका है—दर्द लगा दो, वक्त वहीं ठहर जाता है।” इतिहास के पास भी एक जोड़ी नाखून है, जो हर बार सच के बदन से थोड़ी खाल नोंच लेता है। कभी इन्हीं नाखूनों को ‘पंजा’ कहा गया, कभी ‘कमल-नाल’, कभी ‘हाथ की सफाई’—सभी प्रतीकों की

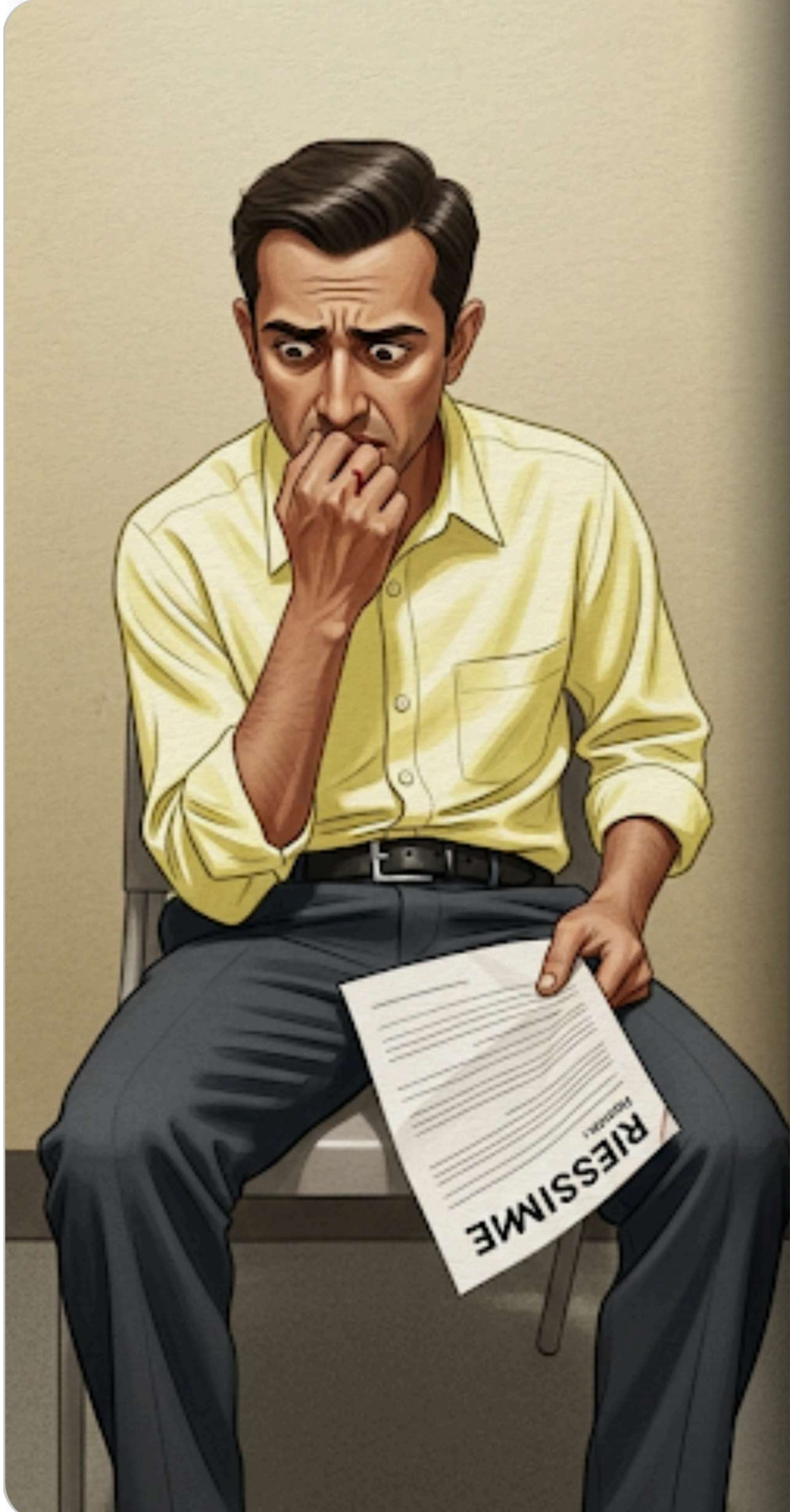


दफ्तर में बाबू कागज पलटते हुए नाखून से कोने उठा देता है—उठती नहीं फाइल, उठती है रिश्वत की उम्मीद। थाने में दारोगा की उँगलियाँ मेज पर टकटकाती हैं—नाखूनों के नीचे बीड़ी की राख और चाय की पपड़ी; न्याय का तराजू वहीं कहीं कोट की जेब में मुड़ा-तड़ा पड़ा है। स्कूल में मास्टरजी नाखून कटवाने को अनुशासन कहते हैं—और बोर्ड-ऑफिस में नाखून बढ़ाना तरक्की का मंत्र—जिसे जो खरोंचना हो, उसके लिए नाखून चाहिए; ज्ञान खुरचना हो तो पेंसिल की नोंक, और हक खुरचना हो तो नाखून की





घर के बरामदे में रविवार की सुबह नाखून-कटाई एक रस्म है—जैसे दादी के शब्दों में रीति, और माँ के हाथों में प्रार्थना। वह बच्चे की उँगली पकड़कर कहती है—“चुप, थोड़ी सी बस”—और बच्चा डर के मारे आँखें बंद कर लेता है; उसे नहीं पता कि यह डर दुनिया की सबसे सस्ती ट्रेनिंग है—आगे चलकर हर कट को मुस्कुराकर झेलना है। पहले ब्लेड से काटते थे—उसी ब्लेड से शेव होती, उसी से तरकारी; फिर आया नेलकटर, पेंच ढीला तो उँगली चीर दे; और कुछ घरों में आज भी कैंची वह राजनीति है जो शीशे को

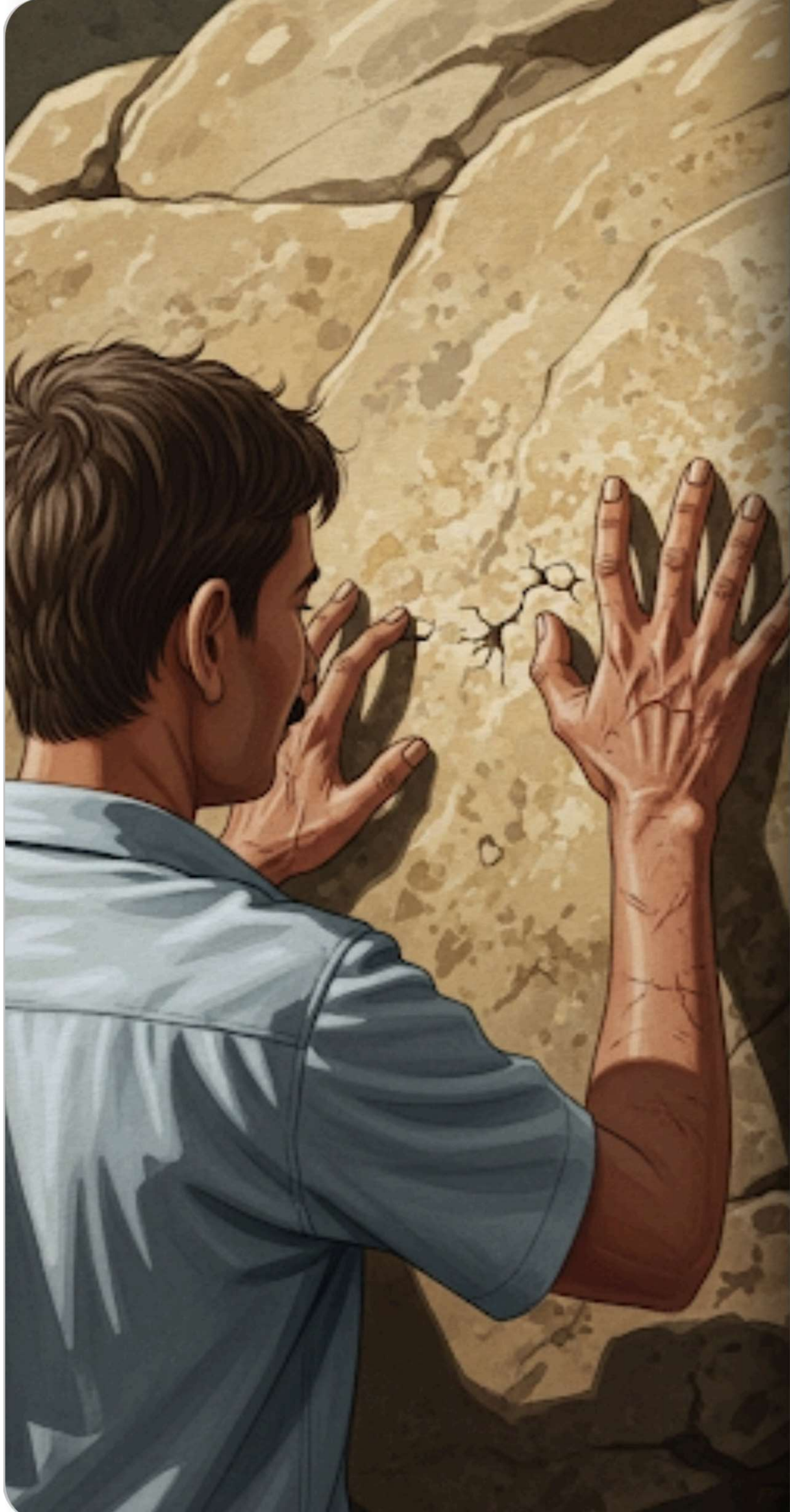





नाखून चबाना चिंता की उस कुटिया का दरवाजा है, जहाँ बेरोजगार की रातें गुज़रती हैं। इंटरव्यू हॉल के बाहर लड़का अपनी उँगलियाँ मुँह में दबाए बैठा है—रेज़्यूमे पर लिखी डिग्रियाँ चमक रही हैं, नाखून के किनारे खून सा उतर आया है; रिसेप्शन से आवाज आती है—“अगला नंबर”—और उसकी हिम्मत कहती है—“पहले यह कोना चबा लूँ।” परीक्षा रद्द, भर्ती रोकी, पद विज्ञापित—नाखून का सफेद हिस्सा हर दिन थोड़ा और बड़ा, जैसे उम्मीद रोज़ नई चर्बी चढ़ा रही हो, ताकि सच



शादी के गीतों में मेहंदी के साथ नाखून भी रंगे जाते हैं—कौन-सा शेड? “चूड़ा-रेड या रूबी-रोज़?” लड़की हँसती है, पिता की आँखें नम हैं—किसान ने इस बार फसल गिरवी नहीं, अपना विस्तर गिरवी रखा है; फोटोग्राफर कहता है—“हैंड-शॉट प्लीज, नाखून कैमरा-फ्रेंडली।” उसी रात, बगल वाले घर की कामवाली अपने हाथों पर तेल मल रही है—बर्तन धोते-धोते नाखून टूट गए हैं; वह अपनी बेटी की उँगलियों पर सस्ता नेल-पेंट लगाती है और मुस्कुरा देती है—“कल तेरी स्कूल में टीचर नहीं डाँटेगी।”





सच पूछिए तो नाखून देश का सबसे ईमानदार ‘हार्ड-डिस्क’ है—जिसमें जीवन की स्क्रैच-फाइलें सेव रहती हैं। ...और तब समझ आता है—नाखून कोई शोपीस नहीं, एक छोटी-सी खुरची है—जिससे हम पेट, इज़्ज़त, और व्यवस्था—तीनों से थोड़ा-थोड़ा जीवन खुरचकर निकालते हैं। तो, हे इंसानी नाखून! तू छोटा है, मगर बयान बड़ा। तेरे किनारे पर चिपटी काली रेखा हमारी जाति-पाती, हमारे काम-धंधे, हमारी रसोई-चूल्हे की छाप है। सभ्यता ने तुझे ब्यूटी-टूल बना दिया, पर तेरा असली